मध्यकालीन कविता

वदीय प्रकाशन
अयोध्या फैजाबाद

मध्यकालीन कविता

सम्पादक मण्डल

डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष : हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

डॉ० रामदेव शुक्ल, उपाचार्य, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

डॉ० कृष्णचन्द्र लाल, उपाचार्य, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

पं० शिवराम त्रिपाठी, उपाचार्य, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

डॉ० सदानन्दप्रसाद गुप्त, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

डॉ० (श्रीमती) पूर्णिमा सत्यदेव, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

डॉ० चित्तरंजन मिश्र, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

डॉ० सुरेन्द्रबहादुर त्रिपाठी, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, संत विनोबा डिग्री कालेज, देवरिया

प्रकाशक

भवदीय प्रकाशन, श्रृंगारहाट, अयोध्या, फैजाबाद

अनुक्रमणिका

कबीरदास

पद

(१)

अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाई।
गूँगे केरी सरकरा,बैठे-बैठे मुसुकाई ।।
भूमि विना अरु वीज विन, तरवर एक भाई ।
अनँत फल प्रकासिया गुर दीया बताई ।।
मन थिर बैसि बिचारिया, रामहि लौ लाई ।
झूठी अनभै बिस्तारी, सब थोथी बाई ।।
कहै कबीर सकति कछु नाँही, गुरु भया सहाई ।
आँवन जाँनी मिटि गई, मन मनहि समाई ।।

(२)

अब मैं रांम सकल सिधि पाई ।
आँन कहूँ तौ राम दुहाई ।।
इहि चिति चाषि सबै रस दीठा, राम नाम सा और न मीठा।
औरै रस ह्वै है कफ गाना हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ।।
दूजा बनिज नहीं कछु बाषर, राम नाम दोऊ तत आषर ।
कहैं कबीर जे हरि रस भोगी, ताको मिला निरंजन जोगी ।।

(३)

काजी तैं कवन कतेब बखांनी।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकौ नहिं जांनी ।।
सकति सनेह पकरि करि सूनति मैं न बदउँगा भाई ।
जौ रे खुदाइ तुरुक मोहि करता, तौ आपहि कटि किन जाई ।।
सुनति कराइ तुरुक जौ होनां तौं औरति को का कहिए ।
अरध सरीरी नारि न छूटै, तातै हिन्दू रहिए ।।
धालि जनेऊ बाह्मन होता मेहरिहिं का पहिराया ।
वै जनम की सूद्रि परोसै तुम पाँडे क्यों खाया ।।
हिन्दू तुरुक कहाँ तैं आए किन एह राह चलाई ।
दिल महिं खोजि देखि खोजा दे, भिस्ति कहाँ तैं आई ।
छांड़ि कतेब राम भजु बउरे, जुलुम करता है भारी ।
कबीर पकरी टेक राम की, तुरुक रहे पचि हारी ।।

(४)

काहे रे नलिनी तूँ कुम्हिलानी
तेरे ही नालि सरोवर पाँनी ।।
जल मैं उतपति जल मैं बास,जल मैं नलिनी तोर निवास ।
ना तल तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कछु कासनि लाग ।।
कहै कबीर जे उदिक समाँन, ते नहिं मुएं हमाँरे जान ।।

(५)

संतौ भाई आई ग्यांन की आँधी रे ।
भ्रम की टाटी सभै उड़ानी माया रहै न बाँधी रे ।
दुचिते की दोइ थूनि गिरांनी मोह बलेंडा टूटा ।
त्रिसनां छांनि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ।
आंधी पाछै जो जल बरसै तिहिं तेरा जन भींनां ।
कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीनां ।

(६)

हरिजन हँस दसा लिएं डोलै । निरमल नांव चुनै जस बोलै
मांन सरोवर तर के बासी, राम चरन चित आंन उदासी।
मुकताहल बिनु चंचु न लावैं, मौनिं गहैं कै हरि गुन गांवैं ।
कउवा कुबुधि निकट नहिं आवै, सो हंसा निज दरसन पावै ।।
कहै कबीर सोई जन तेरा । खीर नीर का करै निबेरा ।।

(७)

डगमग छांडिं दे मन बौरा।
अब तौ जरें मरें बनि आवैं, लीन्हौं हाथि सिंधौरा।।
होइ निसंक मगन होइ नाचै, लोभ मोह भ्रम छांड़ै।
सुरा कहा मरन तैं डरपै, सती न संचै भाड़ै।।
लोक बेद कुल की मरजदा, इह गलैमैं फाँसी।
आधा चलि करि पाछो फिरिहौ होइ जगत मैं हाँसी।।
यहु संसार सकल है मैला रांम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नांउं नहिं छाड़ौं, गिरत परत चढ़ि ऊँचा।।

(८)

निरगुन रांम जपहु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई ।।
चारि वेद अरु सुम्रित पुरांनां, नौं व्याकरनां मरम न जांनां।
सेस नाग जाकै गरुड़ समांनां, चरन कंवल कंवला नहिं जांनां।।
कहै कबीर सो भरमै नांहिं, निज जन बैठे हरि की छांही ।।

(९)

यहु माया रघुनाथ की खेलन चढ़ी अहरै।
चतुर चिकनिया चुनि-चुन मारे कोई न छांड़ा नैरै।।
मौंनी बीर डिगम्बर मारै जतन करंता जोगी
जंगल माहिं के जंगम मारे माया किनहुँ न भोगी ।
वेद पढ़ता बांह्मन मारा सेवा करंता स्वांमीं।
अरथ करंता मिसिर पछाड़ा गल महिं घालि लगांमी ।।
साकत कै तूँ हरता करता हरि भगतन कै चेरी।
दास कबीर रांम कै सरनै ज्यौं आई त्यौं फेरी ।।

(१०)

हमारै गुर दीन्हीं अजब जरी ।
कहा कहौं कछु कहत न आवै अम्रित रसन भरी ।
याही तैं मोहिं प्यारी लागी लैकै गुपुत धरी ।
पांचौं नाग पचीसौं नांगिनि सूंधत तुरत मरी ।
डांइनि एक सकल जग खायौ, सो भी देखि डरी ।
कहै कबीर भया घट निरमल सकल बियाधि टरी ।।

परचा को अङ्ग

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सेनि।
पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक दीठा तेनि।।१।।

कौतुक दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा मांहि है, बेपरवाँही दास।।२।।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान।।३।।

अगम अगोचर गमि नहीं, जहाँ जगमगै जोति।
तहाँ कबीरा बन्दगी, पाप पुन्नि नहिं छोति।।४।।

हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुवा निरन्तर वास।
कवँल जु फूला फूल बिनु, को निरखै निज दास।।५।।

कवीर मन मधुकर भया, करै निरन्तर बास।
कमल जुफूला नीर विनु, को देखै निज दास।।६।।

अन्तरि कँवल प्रकासिया, व्रह्म वास तहँ होइ।
मन भँवरा तहँ लुबधिया जानैगा जन कोइ।।७।।

सायर नाहीं सीप नहिं, स्वाति बूँद भी नाँहि।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिखर गढ़ माँहि।।८।।

घट माँहैं औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कवीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट।।६।।

सूर समाना चाँद मैं, दुहूँ किया घर एक ।
मन का चेता तब भया, कछू पूरबला लेख।।१०।।

हद्द छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावहीं, तहाँ किया बिसराम।।११।।

देखौ करम कबीर का, कछु पूरव जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख।१२।।

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत।
संसा खूटा सुरना भया, मिला पियारा कंत।।१३।।

पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
मुखि कस्तूरी महमहीं, बानी फूटी बास।।१४।।

मन लागा उनमन्न सौं, गगन पहूँचा जाइ।
चाँद बिहूँना चांदिना, अलख निरंजन राइ।।१५।।

मन लागा उनमन्न सी, उनमन मनहि विलग।
लौंन विलंगा पानियाँ, पानीं लौंन विलग।।१६।।

पानी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ।।१७।।

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि।।१८।।

चौहटै चिंतामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।
मीराँ मुझसूँ मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि।।१६।।

पंखि उड़ानी गगन कौं, पिण्ड रहा परदेस।
पानी पीया चंचु बिनु, भूलि गया यहु देस।।२०।।

पंखि उड़ाँनी गगन कौं, उड़ी चढ़ी असमान।
जिहि सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान।।२१।।

सुरति समानी निरति मैं, निरति रहो निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार।।२२।।

सुरति समानी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।
लेख समानां अलेख मैं, यौं आपा माँहै आप।।२३।।

आया था संसार में, देखन कौं बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप।।२४।।

अंक भरे भरि भेटिया, मन नहिं बाँधै धीर।
कहै कबीर वह क्यौं मिलैं, जब लगि दोइ सरीर।।२५।।

सचु पाया सुख ऊपजा, दिलदरिया भरपूरि।
सकल पाप सहजैं गये, साँई मिला हजूरि।।२६।।

धरती गगन पवन नहिं होता, नहिं तोया नहिं तारा।
तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर विचारा।।२७।।

जा दिन किरतम नां हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हुता कबीरा राम जन, जिन देखा औघट घाट।।२८।।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ।।२९।।

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरिप्रगटा आप।।३०।।

तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।
ज्याला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ।।३१।।

तत पाया तन बीसरा, जब मनि धरिया ध्यान।
तपनि गई सीतल भया, जब सुन्नि किया असनान।।३२।।

जिनि पाया तिनि सुगहगह्या, रसनाँ लागी स्वादि।
रतन निराला पाइया, जगत ढंढोल्या बादि।।३३।।

कबीर दिल सावित भया, पाया फल समरत्थ।
सायर माँहि ढँढोलता, हीरै पड़ि गया हत्थ।।३४।।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाँहि।।३५।।

जा कारणि मैं ढूँढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सक्कौं पाइ।।३६।।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाया ठौर।
सोई फिरि आपन भया, जाको कहता और।।३७।।

कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज पारस धनी, नैननि रहा समाय।।३८।।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं।।३९।।

गगन गरजि अंम्रित चुवै, कदली कँवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदगी, कै कोई निज दास।।४०।।

नींव बिहूनां देहुरा, देह बिहूनां देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव।।४१।।

देवल माँहे देहुरी, तिल जेता विस्तार।
माँहै पाती मांहि जल, माँ है पूजन हार।।४२।।

कबीर कँवल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
निसि अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर।।४३।।

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अविगत अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।४४।।

आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले पनिहारि।
ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि।।४५।।

सिव सक्ती दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजुरि।।४६।।

अंमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारखी, अनुभौ उतर्या पार।।४७।।

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौलि।।४८।।

साधु महिमा को अंग

चन्दन की कुटकी भली, नाँ बँबूर अंबराँउँ।
वैश्नौं की छपरी भली, ना साकत बड़ गाँउँ।।१।।

पुर पट्टन सूबस बसै, आनँद ठाँवै ठाँव।
राँम सनेही बाहिरा, ऊजँड़ मेरे भाव।।२।।

जिहि घरि साधु न पूजिए, हरि की सेवा नाँहि।
ते घट मरहट सारिखे, भूत बसैं ता माँहि।।३।।

है गै वाहन सघन घन, छत्र धुजा फहराइ।
ता सुख तैं भिख्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ।।४।।

है गै वाहन सघन घन, छत्रपती की नारि।
तास पटंतर नाँ तुलै, हरिजन की पनिहारी।।५।।

क्यों नृप नारी निंदिए, क्यों पनिहारी को माँन।
वा माँग सँवारै पीव कौं, वा नित उठि सुमिरै राँम।।६।।

कबीर घनि ते सुन्दरी, जिनि जाया बैस्नौं पूत।
राँम सुमिरि निरभै हुआ, सब जग गया अऊत।।७।।

कबीर कुल सोई भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिनि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास।।८।।

साकत बांह्मन मति मिलै, बैसनौं मिलै चंडाल।
अंकमाल दै भेटिए, माँनौ मिले गोपाल।।६।।

राँम जपत दालिद भला, टूटी घर की छाँनि।
ऊँचे मन्दिर जालि दे, जहँ भगति न साराँगपाँनि।।१०।।

कबीर भया है केतकी, भँवर भए सब दास।
जहँ जहँ भगति कबीर की, तहँ तहँ राँम निवास।।११।।

मलिक मुहम्मद जायसी

सिंहल द्वीप - वर्णन खंड

जबहिं दीप नियरावा जाइ। जनु कविलास नियर भा आई।।
घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लाग अकासा।।
तरिवर सबै मलयगिरि लाई। भइ जग छाँह रैनि होई आई।।
मलय-समीर सोहावन छाहाँ। जोठ जाड़ लागै तेहि माहाँ।।
ओही छॉह रैनि होइ आवै। हरियर सबै अकास देखावै।।
पथिक जो पहुँचै सहि कै घामू। दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।।
जेइ वह पाई छाहँ अनूपा। फिर नहिं आइ सहै यह धूपा।।
अस अमराउ सघन बन, बरनि न पारौं अंत।
फूलै फरै छवौ ऋतु जानहु सदा बसंत।।१।।

पानि भरै आवहिं पनि हारी। रूप सुरूप पदमिनी नारी।।
पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं।।
लंक सिंघिनी, सारंग नैनी। हंसगामिनी कोकिल बैषनी।।
आवहिं झुंड सो पाँतिहिं पाँती। गवन सोहाइ सु भाँतिहिं भाँती।
कनक कलस मुखचंद दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाहीं।।
जा सहुँ वै हेरै चख नारी। बाँक नैन जनु हनहिं कटारी।।
केस मेघावरि सिर ता पाईं। चमकहिं दसन बीजु कै नाईं।।
माथे कनक गागरी आवहिं रूप अनूप।
जेहि के जस पनिहारी सो रानी केहि रूप।।२।।

निति गढ़ बाँचि चलै ससित सुरू। नाहिं त होइ बाजि रथ चूरु।।
पौरी नवौ बज्र कै साजी। सहस सहस तहँ बैठे पाजी।।
फिरहिं पाँच कोटनार सु भौरी। काँपै पावँ चपत्र वह पौरी।।
पौरहिं पौरी सिंह गढ़ि काढ़े। डरपहिं लोका देखि तँहोठाढ़े।।
बहुविधान वै नाहर गढ़े। जनु गाजहिं चाहहिं सिर चढ़े।।
टारहिं पूँछ पसारहिं जीहा। कुंजर डरहि कि गुंजरि लीहा।।
कनक सिला गढ़ि सीढ़ी लाई। जग मगाहि गढ़ ऊपर ताई।।
नवौ कवंड नव पौरी, औ तहँ बज्र - केवार।
चारि बसेरे सौं चढै, सत सौं उतरै पार।।३।।

नव पौरी पर दसवँ दुवारा। तेहि पर बाज राज घरियारा।।
घरी सो बैठि गनै घरियारी। पहर पहर सो आपनि वारी।।
जबहीं घरी पूजि तेहिं मारा। घरी घरी घरियार पुकारा।।
परा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा। का निचिंत माटी कर भाँड़ा?।।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ काँचे। आएहु रहै न थिर होई बाँचै।।
घरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ। का निचिंत होइ सोउ बटाऊ?
पहरहिं पहर गजर निति होई। हिया बजर मन जाग न सोई।।
मुहमद जीवन जल भरन रहँट- घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति।।४।।

जन्म खण्ड

भै उनंत पदमावति बारी। रचि रचि बिधि सव कला सँवारी।।
जग बेधा तेहि अंग- सुवासा। भँवर आइ लुबुधे चहुँ पासा।।
बेनी नाग मलयगिरि पैठी। ससि माथे होइ दुइज बैठी।।
भौंह धनुक साधे सर फेरै। नयन कुरंग भूलि जनु हेरै।।
नासिक कीर, कँवल मुख लोहा। पदमिनि रूप देखि जग मोहा।।
मानिक अधर, दसन जनु हीरा। हिय हुलसे कुच कनक -गँभीरा।।
केहरि लंक गवन गज हारे। सुरनर देखि माथ भुइँ धारे।।
जग कोइ दीठि न आवै आछहिं नैन अकास।
जोगि जती सन्यासी तप साधहिं तेहि आस।।५।।

मानसरोदक खण्ड

सरवर तीर पदुमिनि आई। खोंया छोरि केस मुकलाई।।
ससि - मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिनि झांपि लीन्ह चहुँ पासा।।
ओनई घटा परी नग छाहाँ। ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ।।
छपि गै दिनहि भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चाँद परगसा।।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघघटा महँ चंद देखावा।।
दसन दामिनी, कोकिला भाखी। भौहैं धनुख गगन लेई राखी।।

नैन खँजन दुइ केलि करेहीं। कुच नारंग मधुकर रस लेहीं।।
सरवर रूप बिमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पाँव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहि देइ।।६।।

धरी तीर सब कंचुकि सारी। सरवर महँ पैठीं सब बारी।।
पाइ नीर जानौं सब वेली। हुलसहिं करहिं काम कै केली।।
करिल केस बिसहर बिस भरे। लहरैं लेहि कवँल मुख धरे।।
नवल बसंत सँवारी करी। होइ प्रगट जानहु रस भरी।।
उठी कोंप जस दाखिं दाखा। भई उनंत पेग कै साखा।।
सरिवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा।।
धनि सो नीर ससि तरई ऊईं। अब कित दीठ कमल औ कूईं।।
चकई विछुरि पुकारै, कहाँ मिलौं, हो नाहँ।
एक चाँद निसि सरग महँ, दिन दूसर जल माँह।।७।।

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे।।
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई।।
न जनौं कौन पौन लेइ आवा। पुन्य- दसा भै पाप गँवावा।।
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।।
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा। भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।।
पावा रूप रूप जस चहा। ससि - मुख जनु दखन होइ रहा।।
नयन जो देखा कँवल भा। निरमल नीर समीर।
हँसत जो देख, हंस भा। दसन जोति नग हीर।।८।।

नख शिख खंड

का सिंगार ओहि बरनौं, राजा। ओहिक सिंगार ओहि पै छाजा।।
प्रथम सीस कस्तूरी केसा। बलि बासुकि, का और नरेसा।।
भौंर केस, वह मालति रानी। बिसहर लुरे लेहिं अरघानी।।
बेनी छोरि झार जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा।।
कोंवर कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअंग बैसारे।।
बेधो जनौं मलयगिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा।।
घुँघुरवार अलकैं बिस भरी। सँकरै पेम चहैं गिउ परी।।

अस फँदवार केस वै परा सीस गिउ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग सब अऊझु केस कै बाँद।।६।।
बरनौं मांग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहिं चढ़ा जेहि नाहीं।।
बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ। उजियर पंथ रैनि महँ कीआ।।
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनी परगसी।।
सुरुज- किरिन जनु गगन बिसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी।।
खाँड़े धार सहिर जनु भरा। करवत लेइ बेनी पर धरा।।
तेहि पर पूरि धरे जो मोती। जमुना माँझ कांश कै सोती।।
करवत तपा लेहिं होइ चुरू। मकु सों रूहिर लेइ देइ सेंदूरू।।
कनक दुवादस बानि होइ चह सोहाग वह मांग।
सेवा करहिं नखत सब उवै गगन जस गाँग।।१०।।

कहौं लिलार दुइज कै जोती। दुइजाहि जोति कहाँ जग ओती।।
सहस किरिन जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई।।
का सरिवर तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी, बह निकलंकू।।
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा। वह विनु राहु सदा परगासा।।
तेहि लिलार पर तिलक बईठा। दुइज पाट जानहु धुव दीठा।।
कनक पाट जनु बैठा राजा। सबै सिंगार अत्र लेइ साजा।।
ओहि आगे थिर रहा न कोऊ। दहुँ का कहँ अस जुरै संजोगू।।
खरग, धनुक, चक वान दुइ, जग - मारन तिन्ह नावँ।
सुनि कै परा मुरुछिकै (राजा) मो कहँ हए कुठावँ।।११।।

नैन बाँक, सरि पूज न कोऊ। मानसरोदक उपलहिं दोऊ।।
राते कँवल करहिं अलि भवाँ। घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ।।
उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा। चहहिं उपथि गगन कहँ लागा।।
पवन झकोरहिं देइ हिलोरा। सरग लाइ भुइँ लाइ बहोरा।।
जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अडार जाहिं पल माहाँ।।
जबहि फिराहिं गगन गहि बोरा। अस वै भौंर चक्र के जोरा।।
समुद-हिलोर फिरहिं जनु झूले। खंजन लरहिं, मिरिग जनु भूले।।
सुभर सरोवर नयन वै, मानिक भरे तरंग।
आवत तीर फिरावहीं, काल भौंर तेहि संग।।१२।।

अधर सुरंग अमी - रस भरे। बिंब सुरंग लाजि बन फरे।।
फूल दुपहरी जानौं राता। फूल झरहिं ज्यों ज्यों कह बाना।।
हीरा लेइ सो विद्रमु-धारा। बिहँसत जगत होइ उजियारा।।
भए मँजीठ पानन्ह रँग लागे। कुसुम - रंग थिर रहै न आगे।।

अस वै अधर अमी भरि राखे। अबहिं अछूत, न काहू चाखे।।
मुख तँबोल - रँग- धारहिं रसा। केहि मुख जोग जो अमृत बसा?।।
राता जगत देखि रँगराती। सहिर भरे आछहि बिहँसाती।।
अमी अधर अस राजा सब जग आस करेइ।
केहि कहँ कवँल बिगासा, को मधुकर रस लेइ?।।१३।।

दसन चौक बैठे जनु हीरा। औ बिच बिच रंग स्याम गंभीरा।।
जस भादौं निसि दामिनि दीसी। चमकि उठैं तस बनी बतीसी।।
वह सुजोति हीरा उपराहीं। हीरा जोति सो तेहि परछाहीं।।
जेहि दिन दसनजोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई।।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।।
जहँ जहँ बिहसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।।
दामिनि दमकि न सखरि पूजी। पुनि ओहि जोति और को दूजी।
हँसत दसन अस चमके वाहन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि।।१४।।

बैरिन पीठि लीन्हि वह पाछे। जनु फिरि चली अपछरा काछे।।
मलयागिरि कै पीठि सँवारी। बेनी नागिनी चढ़ी जो कारी।।
लहरै देति पीठि जनु चढ़ी। चीर - ओहार केंचुली मढ़ी।।
दहुँ का कहँ अस बेनी कीन्ही। चंदन बास भुअंगै लीन्हीं।।
किरसुन करा चढ़ा ओहि माथे। तब तौ छूट, अब छूटै न नाथे।।
कारे कवँल गहे मुख देखा। ससि पाछे जनु राहु बिसेखा।।
को देखै पावै वह नागू। सो देखै जेहि के सिर भागू।।
पन्नग पंकज मुख गहे, खंजन तहाँ बईठ।
छत्र, सिंघासन, राजधन ताकहँ होइ जो डीठ।।१५।।

नागमती वियोग खंड

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।।
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए।।
खड़ग, बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी।।
दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु घट रहै न जीऊ।।

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं विनु नाह मंदिर को छावा?।।
आद्रा लाग, लागि भुइँ लेई। मोहिं विनु पिउ को आदर देई?।।
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौं औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै,हम सुख भूला सर्ब।।१६।।

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं विरह झुरानी।।
लाग पुनरवसु पीउ न देखा। भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा।।
रकत कै आँसु परहिं भुइ टूटी। रेंगि चलीं जस बीर बहूटी।।
सखिन्ह रचना पिउ संग हिंडोला। हरियर भूमि, कुसुंभी चोला।।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा।।
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी।।
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।।
परवत समुद अगम बिच, बिहड़ घन बनढाँख।
किमि कै भेटौं कंत तुम्ह? ना मोहि पाँव न पंख।।१७।।

अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी। दूभर रैनि, जाइ किमि गाढ़ी?।।
अब यहि बिरह दिवस भा राती। जरौं बिरह जस दीपक बाती।।
काँपै हिया जनावै सीऊ। तौ पै जाइ होइ संग पीऊ।।
घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप - रंग लेइगा नाहू।।
पलटि न वहुरा मा जो बिछोई। अबहुँ फिरै फिरैं रंग सोई।।
बज्र अगिनि विरहिन हिय जारा। सुलुगि सुलुगि दगधै होइ छारा।।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोवन जनम करै भमसंतू।।
पिउ सौं कहेतु सँदेसड़ा, हे भौंरा। हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम्ह लाग।।१८।।

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा।।
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा।।
तरिवर झरहिं झरहिं बन ढाखा। भइ ओनंत फूलि फरि साखा।।
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।।
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी।।
जौ पै पीउ जरत अस पावा। जरत - मरत मोहिं रोष न आवा।।
राति - दिवस सब यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे।।
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन! उड़ाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाव।।१६।।

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चंदन भा आगी।।
सूरुज जरत, हिवंचल ताका। बिरह- बजागि सौंह रथ हाँका।।
जरत बजागिनि करू, पिउ! छाहाँ। आइ बुझाउ, अंगारन्ह माहाँ।।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें कऊ फुलवारी।।
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिरि भूँजेसि तजेउँ न बारू।।
सरबर-हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।।
बिरहत हिया करहु, पिउ! टेका। दीठि दवंगरा मेरवहु एका।।
कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गयउँ सुखाइ।
कवहुँ बेलि फिरि पलुहै जो पिउ सींचै आइ।।२०।।

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत- आँसु घुँघची बन बोई।।
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव? बिरहा-दुख ताती।।
जहँ-जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी। तहँ - तहँ होइ घुँघुचिकै रासी।।
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुंजा गँजि करै 'पिउ पिऊ'।।
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते।।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ।।
देखौं जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता?।।
नहिं पावस ओहि देसरा, नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत।।२१।।

नागमती संदेश खंड

अस परजरा बिरह कर गठा। मेघ साम भए धूम जो उठा।।
दाढ़ा राहु, केतु गा दाधा। सूरज जरा, चाँद जरि आधा।।
औ सब नखत तराई जरहीं। टूटहिं लूक, धरति महँ परहीं।।
जरै सो धरती ठावहिं ठाऊँ। दहकि पलास जरै तेहि दाऊँ।।
बिरह - साँस तस निकसै झारा। दहि दहि परवत होहिं अँगारा।।
भँवर पतंग जरैं औ नागा। कोइल, भुजइल डोमा कागा।।
बन - पंखी सब जिउ लेइ उड़े। जल महं मच्छ दुखी होइ बुड़े।
महूँ जरत तहँ निकसा, समुद बुझाएउँ आइ।
समुद, पानि जरि खारमा, धुँआ रहा जग छाइ।।२२।।

तुलसीदास

दोहावली

रामनाम - मनि - दीप धरु - जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरौ जौ चाहसि उजियार ।।१।।६

हिय निर्गुन नयननि सगुन रसना राम सुनाम ।
मनहुं पुरट - संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ।।२।।७

रामनाम को अंक है, सब साधन है सून ।
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दसगून ।।३।।१०

बरषा ऋतु रघुपति - भगति तुलसी सालि सुदास ।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ।।४।।२५

हिय फाटहु फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम ।
द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत नाम।।५।।४१

हरो चरहिं तापहिं बरत फरे पसारहिं हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ ।।६।।५२

कै तोहिं लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु - प्रिय होहि ।
दुइ महँ रुचै जो सुगम् सो कीबे तुलसी तोहि ।।७।।७८

सब साधन को एक फल, जेहि जान्यो सोइ जान ।
ज्यों त्यों मन -मन्दिर बंसहिं राम धरे धनु बान ।।८।।९०

तनु विचित्र,कायर वचन, अहि अहार, मन घोर ।
तुलसी हरि भये पक्ष धर, ताते कह सब मोर ।।९।।१०७

एक भरोसो, एक बल,एक आस विस्वास ।
एक राम - घनस्याम हित चातक तुलसीदास ।।१०।।२७७

मान राखिबो, मांगिबो पिय सों नित नवनेहु ।
तुलसी तीनिउ तब पाबैं जौ चातक मत लेहु ।।११।।२८५

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निदहिं वेद पुरान ।।१२।।५५४

गोड़ गँवार नृपाल महि, यमन महामहिपाल ।
साम न दाम न भेद, कलि केवल दंड कराल ।।१३।।५५६

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच ।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ।।१४।।५७२

मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल माज ।
तुलसी एतो जानिए, राम गरीब - नेवाज ।।१५।।५७३

कवितावली

बालकाण्ड

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से ।
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन -जातक से ।
सजनी ससि मे समसील उभै नवनील सरोरुह से विकसे ।।१।।

डिकति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पव्वै समुद्र सर ।
ब्याल बधिर तेहिकाल, विकल दिगपाल चराचर ।।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर ।
सुर विमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर ।।
चौंके विरंचि संकर सहित कोल कमढ अहि कलमल्यौ ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिबधनु दल्यौ ।।२।।११

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ।।
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं ।
याते सबै सुधि भुलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।३।।१७

अयोध्या काण्ड

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई ।
औध तजी मग बास के रुख ज्यौ , पंथ के साथी ज्यौ लोग - लुगाई ।।
संग सुबन्धु पुनीत प्रिया मनो धर्म किया धरि देह सुहाई ।
राजिवलोचन राम चले तजि वाप को राज बटाऊ को नाईं ।।४।।१

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है ।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिनकान कियो है ।
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?
आँखिन में, सखि राखिवें जोग, इन्है किमि कै वनवास दियो है ।।५।।२०

सुनि सुंदर बैन सुधारस - साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछै करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछु मुसकाइ चलीं ।
तुलसी तेहि अवसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली ।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज - कली ।।६।।२२

सुन्दर काण्ड

बालघी बिसाल बिकराल ज्वाल -जाल मानौं,
लंक लीलिबो को काल रसना पसारी है ।
कैधों ब्योम बीथिका भरे हैं भुरि धूमकेतु ,
बीररस बीर तरवारि सी उधारी है
तुलसी सुरेश -चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरू तें कृसानु - सरि भारी है ।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजारयो अब नगर प्रजारी है ।।७।।५

लंका काण्ड

रजनीचर मत्तगयंद -घटा बिघटै मृगराज के साज लरै ।
झपटैं, भट कोटि मही पटकै,गरजै रघुवीर की सौंह करै ।।
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै ।
विरुझो रन मारुत को विरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै ।।८।।

उत्तरकाण्ड

विषया परनारि निसा -तरुनाई, सुपाइ परनौ अनुरागहि रे ।
जम के पहरू दुख रोग वियोग विलोकतहू न विरागहि रे ।।
ममताबस तै सब भूलि गयो, भयो भोर महाभय भागहि रे ।
जरठाइ दिसा रविकाल उग्यो, अजहुँ जड़ जीव न जागै रे ।।६।।

भलि भारत भूमि, भलो कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै ।
करषा तजि कै परुषा बरषा, हिम मारुत घाम सदा सहिकै ।।
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै ।
न तु और सबै विष बीज बये हर - हाटक काम दुहा नहिकै ।।१०।।३३

गीतावली

बालकाण्ड

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं ।
कर पद मुख चख कमल लसत लखि लोचन -भँवर भुलावौं ।।
बाल -बिनोद -मोद -मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं ।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृग नयनि बुलावौं ।।
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं ।।
चारु चरित रघुवर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ।।१।।१५।।

नेकु! सुमुखि चित लाइ चितौ री ।
राजकुवँर -मुरति रचिबे की रुचि सुविरंचि श्रम कियो है कितौ री ।।
नख सिख सुन्दरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ री ।
साँवर रूप सुधा भरिवे कहँ नयन कमल कल कलस रितौ री ।।
मेरे जान इन्हैं बोलिवे कारन चतुर जनक ठयो ठाठ ईइतौ री ।
तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु -धनु भूरि भाग सिय मातु पितौरी ।।२।।७५

दूलह राम, सीय दुलही री !
धन -दामिनि -बर, हरन मन सुंदरता नख सिख निबही री ।।
ब्याह बिभूषन बसन विभुषित,सखि -अवलि लखि ठगि सी रही री ।
जीवन -जनम -लाहु लोचन -फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही री ।।
सुखमा -सुरभि सिंगार छिर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री ।
मथि माखन सिय राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहुँ मही री ।।
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही री ।
रूप -रासि विरची बिरंचि मनो सिला लवनि रति -काम लही री ।।३।।१०४

अयोध्याकाण्ड

रहहु भवन हमरे कहे कामिनि ।
सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृह -स्वामिनि ।।
राजकुमारि कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मुदु पग गज गामिनी।।।
दुसह बात, बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि।।
हौं पुनि पितु आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति दामिनि ।
तुलसिदास प्रभु विरह वचन सुनि सही न सकीं मुरछित भइ भामिनि ।।४।।५

पिय निठुर बचन कहे कारन कवन ?
जानत हौ सब के मन की गति, मृदु चित परम कृपालु रवन ! ।।
प्राननाथ सुंदर सुजाल मनि, दीन बन्धु जग -आरति -दवन ।
तुलसिदास प्रभु -पद- सरोज तजि रहिहौं कहा करौगी भवन ? ।।५।।८

मोको विधुबदन बिलोकन दीजै ।
राम लखन मेरी यहै भेंट, बलि जाउँ जहाँ मोहीं मिलि लीजै ।।
सुनि पितु -बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हैं ।
अजहुँ अवनि बिरदरत दरार मिस सो अवसर -सुधि कीन्हैं ।।
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु,मुरछित भयो भूप न जाग्यो ।
करम -चोर नृप -पथिक मारि मानो, राम -रतन लै भाग्यो ।।
तुलसी रबिकुल-रवि रथ चढ़ी चले ताकि दिसि दखिन सुहाई ।
लोग नलिन भए मलिन अवध -सर, बिरह विषम हिम पाई ।।६।।१२

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वै हौं ।
तौ जननी ! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ह्वैहौं?
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि ?कौन मानिहै साँचि?
महिमा -मृगी कौन सुकृति की खल -वच -विसिखनि बाँची?
गहि न जाति रसना काहू की कहौ जाहि जोइ सूझै ।
दीनवंधु कारुन्य -सिंधु बिनु कौन हिये की बूझै ?
तुलसी राम बियोग -बिषम -विष -विकल नारिनर भारी ।
भरत -सनेह -सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ।।७।।

हाथ मीजिबो हाथ रहयो ।
लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्याँ कहा जात बह्यो ।।
पति सुरपुर सियराम -लखन बन, मुनिव्रत भरत गह्यो ।
हौं रहि घर मसान पावक ज्यों मरबोई मृतक दह्यो ।।
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ विधि कहुँ कुलिस लह्यो ।
तुलसी बन पहुंचाइ फिरि सुत, क्यों कछु परत कह्यों ?।।८।।

लंका काण्ड

जौ हौं अब अनुसासन पावौं ।
तौ चन्द्रमहि निचोरी चैल -ज्यों आनि सुधा सिर नावौं ।।
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत -कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरौ तुरत राहु दै ताबौ।।
विवुध -वैद वरबस आनौं धरि, तौ प्रभु अनुग कहावौं ।

पटकौं मीच नीच मुषक ज्यौं, सवहिं को पाप बहावौं ।।
तुम्हीरिहि कृपा, प्रताप तिहारेहि नेकु विलम्ब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसी - प्रभु, जेहि तुम्हरे मन भावौं ।।६।।

विनय पत्रिका

वंदौ रघुपति करुना निधान । जाते छूटै भव · भेद ज्ञान ।।
रघुवंस -कुमुद सुखप्रद निसेस । सेवित पदपंकज अज महेस ।।
निज -भगत -हृदय -पाथोज -भृंग । लावन्य वपुष अगनित अनंग ।।
अति प्रवल मोह -तम -मारतंड । अज्ञान -गहन -पावक प्रचंड ।।
अभिमान -सिंधु -कुंभज उदार । सुररंजन, भंजन भूमि भार।।
रागादि-सर्पगन-पन्नगारि। कंदर्प-नाग-मृगपति मुरारि।।
भवजलधि -पोत चरनारविंद। जानकी -रमन आनंद कंद ।।
हनुमंत -प्रेमवापी -मराल । निष्काम -कामधुक गो, दयाल ।।
त्रैलोक्य -तिलक गुनगहन राम । कह तुलसिदास विश्राम धाम ।।१।।६४

राम जपु राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर भव - नीरनिधि, नाम निजु नाव रे।।
एक ही साधन सब रिधि सिधि साधि रे।
ग्रसे कलि रोग जोग संजम समाधि रे।।
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, वाम रे।
रामनाम ही सो अन्त सब ही को काम रे।।
जग नभ- बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ के - से धौरहर देखि तू न भूलि रे।।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे।।२।।६६

जागु, जागु, जीव जड़! जोहै जग - जामिनी।
देह-गेह - नेह जानु जैसे घन - दामिनी।।
सोवत सपनेहूँ संहै संसृति - संताप रे।
बूड़यो मृग-वारि खायो जेवरी को साँप रे।।
कहैं बेद- बुध, तू तो बूझि मन माहिं रे।
दोष - दुख सपने के जागे ही पै जाहिं रे।।
तुलसी जागे ते जाय ताप तिहूँ ताय रे।
राम - नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे।।३।।७३

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी रावरे सों
झूठ क्यों कहौंगो, जानौ सबही के मन की।
करम वचन हिए, कहौं न कपट किए,
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की।।
दूसरो भरोसो नाहिं, बासना उपासना की
बासव, विरंचि, सुर - नर- मुनिगन की।
स्वारथ के साथी मेरे, हाथी स्वान लेवा देई,
काहू तो न पीर रघुवीर! दीनजन की।।
साँप· सभा सावर लवार भए देव दिव्य
दुसह साँसति कीजै आगे ही या तन की।
साँचे परे पाऊँ पान, पंचन में पन प्रमान
तुलसी - चातक आस राम - स्याम - घन की।।४।।७५

मन माधव को नेकु निहारहि ।
सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों छन -छन प्रभुहिं सँभारहि।।
सोभासील ज्ञान- गुन - मंदिर सुंदर परम उदारहि।
रंजन - संत अखिल - अघ - गंजन, भंजन विषय - विकारहि।।
जौ विनु जोग जज्ञ व्रत संजम, गयो चहहि भव पारहि।
तै जनि तुलसिदास निसि बासर हरिपद -कमल विसारहि।।५।।८५

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम भगति - सुरसरिता आस करत ओस कन की।।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतला न वारि, पुनि हानि होत लोचन की।।
ज्यों गच - काँच विलोकि से जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की।।
कहँ लौं कहां कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की।।६।।६०

यह विनती रघुबीर गुसाईं।
और आस- विस्वास-भरोसो, हरो जीव - जड़ताई।।
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु रिधि- सिधि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग रामपद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई।।
कुटिल करम लै जाहिं मोहि, जहँ जहँ अपनी बरिआई।

तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़िए कमठ · अंड की नाईं।।
यहि जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति-प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इकठाँईं।।७।।१०३

केसव! कहि न जाइ का कहिए?
देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए।।
सून्य-भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न मरै भीति, दुख पाइय यहि तनु हेरे।।
रविकर - नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।।८।।१११

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु - कृपातें संत · सुभाष गहौंगो।।
जया लाभ संतोष सदा काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित - निरत निरंतर मन - क्रम बचन नेम निबहौंगो।।
परुष बचन अति दुसह सबन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो।।
परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि - भगति लहौंगो।।६।।१७२

रामचरितमानस

उत्तरकाण्ड

(राम -राज्य वर्णन)

रामराज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहूसन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई।।
बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोगा।।२०।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहि परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहूँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पारी। सब सुंदर सब बिरूज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अनुध न लच्छनहीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।२१।।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभूता कछु बहुत न तासू।।
सो महिमा समुझत प्रभू केरी। यह बरनत हीनता धनेरी।।
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी।।
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दमसीला।।
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।।
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर नारी।।
एकनारि ब्रत रत सबझारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।
दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज।।२२।।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
कूजहि खग मृग नाना वृदां। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
लता विटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्त्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।।
प्रगटीं गिरिन्ह विविध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।।
बिधु महि पूर मयूरवन्हि रवि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज।।२३।।

ज्ञान-भक्ति निरूपण

इहां न पच्छपात कछु राखउँ। वेद पुरान संत मत भाषउँ।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेही डरपति अति माया।।
राम भगति निरुपम निरुपाधी। वसइ जासु उर सदा अवादी।।
तेहि विलोकि माया सकुचाई। करि न सकई कछु निज प्रभुताई।।
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुखखानी।।
यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ।।११६(क)।।

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अविछीन।।११६(ख)।।

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बनइ न जाइ बखानी।।
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायावस भयउ गोसाईं। बॅध्यो कीर मरकट की नाईं।।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई।।
जीव हृदय तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी।।
अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई।।
सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई।।
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।।
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै।।
मुदिताँ मथै विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।।
जोग अगिनि करि प्रगट तव कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।११७ (क)।

तव विग्यानारूपिनी बुद्धि विसद घृत पाई।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।।११७(ख)।

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।।११७ (ग)।।

एहि विधि लेसै दीप तेज ससि विग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब।।११७ (घ)।।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा।।
तब सोह बुद्धि पाइ उंजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि नरूआरा।।
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई।।
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। विघ्न अनेक करइ तब माया।।
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई।।
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल वात बुझावहिं दीपा।।
होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्हतन चितव न अनाहित जानी।।
जौं तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी।।
इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहि कपाट उघारी।।
जब सो प्रभंजन डर गृहँ जाई। तबहिं दीप विग्यान बुझाई।।
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि विवाल भइ विषय बतासा।।
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई।।
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी।।
तब फिरि जीव बिबिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस।।११८ (क)।।

कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन बिवेक।
होई घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।।११८ (ख)।।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परस पद लहई।।
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।।
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवि बरिआईं।।
जिमि थल विनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई।।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।

अस विचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने।।
भगति करत विनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा।।
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी।।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ नजाहि सोहाई।।
सेवक सेव्य भाव विनु भवन तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत विचारि।।११९ (क)।।

जो तेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहि जीव ते धन्य।।११९ (ख)।।

सूरदास

विनय

चरन-कमल बंदौं हरि राइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाइ ।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बँदौं तिहिं पाइ ।।१।।

अविगत-गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगैं मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै ।
परम स्वाद सबही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै ।
रूप-रेख-गुन-जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै ।
सब विधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै ।।२।।

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ ।
अति गँभीर-उदार-उदधि हरि, जान- सिरोमनि राइ ।
तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु-समान ।
सकुचि गनत अपराध- समुद्रहिं, बूँद-तुल्य भगवान ।
बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसे ।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौं तौ तैसे ।
भक्त- विरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे ।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ।।३।।

विनती सुनौ दीन की चित दै, कैसे तुव गुन गावै ।
माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै ।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै ।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै ।
मन अभिलाष-तरँगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै ।
सोवत सपने में ज्यों सँपति, त्यों दिखाइ बौरावै ।
महा मोहनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै ।
ज्यों दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै ।
मेरे तो तुम पति, तुमहीं गति, तुम समान को पावै ।
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु को मो दुख बिसरावै ।।४।।

माधव जू यह मेरी इक गाइ ।
अव आज तैं आप आगैं दई, लै आइयै चराइ ।
यह अति हरहाई, हटकत हूँ, वहुत अमारग जाति ।
फिरति वेद-वन-ऊख उखारति, सव दिन अरु सव राति ।
हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन माहँ ।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि वाहँ ।
निधरक रहौं सूर के स्वामी, जनि मन जानौ फेरि ।
मन-ममता रुचि सौं रखवारी, पहिलैं लेहु निवेरि ।।५।।

अव मैं नाच्यौं वहुत गुपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह के नूपुर वाजत, निन्दा-सवद-रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असँगत चाल ।
तृष्ना नाद करति घट-भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा वाँध्यौं, लोभ-तिलक दियौ भाल ।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सवै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल ।।६।।

धोखैं ही धोखैं डहकायौ ।
समुझि न परी,विषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर-माँझ गँवायौ ।
ज्यों कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई जहूँ दिसि धायौ ।
जनम-जनम वहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु वँधायौ ।
ज्यों सुक सेमर सेव आस लगि, निसि-वासर हठि चित्त लगायौ ।
रीतौ पर्‌यौ जवै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, तांवरौ आयौ ।
ज्यों कपि डोरि-वाँधि वाजीगर, कन-कन कौं चौंहटैं नचायौ ।
सूरदास भगवन्त भजन-विनु, काल-व्याल पै आपु डसायौ ।।७।।

चित्त-बुद्धि-संवाद

चकई री चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग ।
जहँ भ्रम-निसा होत नहिं कवहूँ, सोइ सायर सुख जोग ।
जहाँ सनक-सिव हंस, मीन, मुनि नख रवि-प्रभा प्रकास ।
प्रफुल्लित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुँजत निगम सुवास ।
जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै ।
सो सर छाँड़ि कुवुद्धि विहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै ।
लक्ष्मी सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरदास ।
अव न सुहात विषय-रस छीलर,वा समुद्र की आस ।।८।।

जो सुख होत गुपालहिं गाएँ ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हें, कोटिक तीरथ न्हाएँ ।
दिऐं लेत नहिं चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाएँ ।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत, नँद-नँदन उर आएँ ।
बंसीवट, वृंदावन, जमुना, तजि बैकुंठ न जावै ।
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै ।।६।।

द्वितीय स्कन्ध

आत्म ज्ञान

अपुनपौ, आपुन ही बिसर्यौ ।
जैसे स्वान काँच-मंदिर मैं भ्रमि-भ्रमि भूकि पर्यौ ।
ज्यों सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृन- सूँधि फिर्यौ ।
ज्यों सपने में रंक भूप भयो, तरुवर अरि पकर्यौ ।
ज्यों केहरि प्रतिविम्ब देखि कै, आपुन कूप पर्यौ ।
जैसें गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अर्यौ ।
मर्कट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर - घर द्वार फिर्यौ ।
सूरदास नलिनी को सुवटा, कहि कौनें पकर्यौ ।।१०।।

राम - विलाप

सुनौ अनुज, इहिं वन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी ।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी ।
करि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि - मुख प्रभा धरी ।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी ।
चंपक - बरन, चरन - कर कमलनि, दाड़िय दसन लरी ।
गति मराल अरु विम्ब अधर छवि अहि अनूप कवरी ।
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुग ज्यों जाति घरी ।
सूरदास प्रभु प्रिया - प्रेम - वस, निज महिमा बिसरी ।।११।।

निरखि मुख राघव धरत न धीर ।
भए अति अरुन, विसाल कमल - दल - लोचन मोचत नीर ।
बारह बरस नींद है साधी तातैं बिकल सरीर ।
बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ, बिपति - बँटावन बीर ।
दसरथ - मरन, हरन सीता कौ, रन बैरिन की भीर ।
दूजौ सूर सुमित्रा - सुत विनु, कौन धरावै धीर? ।।१२।।

दशम स्कन्ध

सोभा - सिन्धु न अंत रही री ।
नंद - भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिन फिरति बही री ।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर - घर बेंचति फिरति दही री ।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत विधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री ।
जसुमति - उदर - अगाध - उदधि तैं, उपजी ऐसी सबनि कही री ।
सूर स्याम प्रभु इन्द्र - नीलमनि, ब्रज - बनिता उर लाइ गही री ।।१३।।

जसुदा मदन गुपाल सोवावै ।
देखि सयन - गति त्रिभुवन कंपै, ईस विरंचि भ्रमावै ।
असित - अरुन - सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै ।
जनु रविगत संकुचित कमल जुग, निसि अलि उड़न न पावै ।
स्वास उदर उससित यौं, मानौं दुग्ध - सिन्धु छवि पावै ।
नाभि - सरोज प्रगट पदमासन उतरि नाल पछितावै ।
कर सिर - तर करि स्याम मनोहर, अलक अधिक सोभावै ।
सूरदास मानौ पन्नगपति, प्रभु ऊपर फन छावै ।।१४।।

हरि जू की बाल - छवि कहौं बरनि ।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज - सोभा हरनि ।
भुज भुजंग, सरोज नैननि, बदन विधु जित लरनि ।
रहे विवरनि, सलिल, नभ, उपमा ऊपर दुरि डरनि ।
मंजुल मेचक मृदुल तन, अनुहरत भूषन भरनि ।
मनहुँ सुभग सिंगार - सिसु - तरु, फर्‌यौ अद्‌भुत फरनि ।
चलत पद प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटरुवनि करनि ।
जलज - संपुट - सुभग - छवि भरि लेति उर जनु धरनि ।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद - घरनि ।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि ।।१५।।

सखि री, नंद-नंदन देखु
धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु ।
नील पाट पिरोइ मनि गन, फनिग धोखैं जाइ ।
खुनखुना कर, हँसत हरि, हर नचत डमरु बजाइ ।
जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौं बनाइ ।
मुंड माला मनौ हर-गर ऐसी सोभा पाइ ।

स्वाति-सुत-माला विराजत स्याम तन इहिं भाइ ।
मनौ गंगा गौरि डर हर लई कंठ लगाइ ।
केहरी-नख निरखि हिरदै, रहीं नारि विचारि ।
बाल ससि मनु भाल तैं लै उर धर्‌यौ त्रिपुरारि ।
देखि अंग अनंग झझक्यौ, नंद सुत हर जान ।
सूर के हिरदै बसौ नित, स्याम-सिव कौ ध्यान ।।१६।।

महरि तैं बड़ी कृपन है माई ।
दूध-दही वहु विधि कौ दीनौ, सुत सौं धरति छपाई ।
बालक बहुत नहीं री तेरैं, एकै कुंवर कन्हाई ।
सोऊ तौ घरही घर डोलतु माखन खात चोराई ।
वृद्धि बयस पूरे पुन्यनि ते, तैं बहुतै निधि पाई ।
ताहू के खैवे-पीवे कौं, कहा करति चतुराई ।
सुनहु न वचन चतुर नागरि के जसुमति नन्द सुनाई ।
सूर स्याम कौं चोरी कैं मिस, देखन है यह आई ।।१७।।

कुंअर जल लोचन भरि-भरि लेत ।
बालक बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत ।
छोरि उदर तैं दुसह दाँवरी, डारि कठिन कर बेंत ।
कहि धौं री तोहि क्यौं करि आवैं, सिसु पर तामस एत ।
मुख आँसू अरु माखन कनुका, निरखि नैन छवि देत ।
मानौ स्रवत सुधानिधि मोती, ऊडुगन अवलि समेत ।
ना जानौं किहि पुन्य प्रकट भए इहिं ब्रज-नन्द-निकेत ।
तन-मन-धन न्यौछावर कीजै सूर स्याम कैं हेत ।।१८।।

मुख-छवि देखि हो नंद-घरनि ।
सरद निसि को अंसु अगनित इंदु आभा हरनि ।
ललित श्री गोपाल-लोचन-लोल आँसू-ढरनि ।
मनहुँ बारिज विथकि विभ्रम, परे परबस परनि ।
कनक-मनि-मय-जटित-कुँडल-जोति जगमग करनि ।
मित्र-मोचन मनहुँ आए, तरल गति द्वै तरनि ।
कुटिल कुन्तल, मधुप मिलि मनु, कियौ चाहत लरनि ।
वदन कांति बिलोकि सोभा सकै सूर न बरनि ।।१९।।

कालीदमन

फन-फन प्रति निरतत नंद-नंदन ।
जल-भीतर जुग जाम रहे कहूँ, मिट्यौ नहीं तन चन्दन ।
उहै काछनी कटि, पीताम्वर, सीस मुकुट अति सोहत ।
मानौ गिरि पर मोर अनन्दित, देखत ब्रज जन मोहत ।
अंवर थके अमर ललना सँग, जै-जै धुनि तिहुँ लोक ।
सूर स्याम काली पर निरतत, आवत हैं ब्रज ओक ।।२०।।

जव हरि मुरली अधर धरी ।
गृह-व्योहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी ।
पदरिपु पट अंटक्यौ न सम्हारति, उलट न पलट खरी ।
सिव-सुत-वाहन आइ मिले हैं, मन चित्त वुद्धि हरी ।
दुरि गए कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि विसरी ।
उडुपति विद्रुम, विम्व खिसाने, दामिनि अधिक डरी ।
मिलिहैं स्यामहिं हंस-सुता-तट, आनन्द उमँग भरी ।
सूर स्याम कौं मिलीं परस्पर, प्रेम-प्रभाव-ढरी ।।२१।।

धेनु दुहत अतिहीं रति वाढ़ी ।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढीं ।
मोहन-कर तैं धार चलति, परि मोहनि-मुख अतिही छवि गाढ़ी ।
मनु जलधर जलधार वृष्टि-लघु, पुनि-पुनि प्रेम चंद पर वाढ़ी ।
सखी संग की निरखति यह छवि, भई व्याकुल मन्मथ की डाढ़ी ।
सूरदास प्रभु के रस-वस सव, भवन-काज तैं भई उचाढ़ी ।।२२।।

रास लीला

मानौ माई घन घन अन्तर दामिनि ।
घन दामिनि दामिनि घन अन्तर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि ।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई जामिनि ।
सुन्दर ससि गुन रूप-राग-निधि, अङ्ग-अङ्ग अभिरामिनि ।
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भई गुन ग्रामिनि ।
रूप निधान स्याम सुन्दर घन, आनन्द मन विस्रामिनि ।
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक भाइ-भेद गज-गामिनि ।
को गति गने सूर मोहन सँग, काम विमोह्यो कामिनि ।।२३।।

ग्रीष्म लीला

उपमा हरितनु देखि लजानी ।
कोउ जल मैं, कोउ बननि रहीं दुरि, कोउ कोउ गगन भमानी ।
मुख निरखत ससि गयौ अंबर कौं, तड़ित दसन छवि हेरि ।
मीन कमल, कर, चरन नयन डर, जल मैं कियौ बसेरि ।
भुजा देखि अहिराज लजाने, बिवरनि पैठे धाइ ।
कटि निरखति केहरि डर मान्यौं, बन बन रहे दुराइ ।
गारी देहि कविनि कैं बरनत, श्री अँग पटतर देत ।
सूरदास हमकौं सरमावत, नाउँ हमारौ लेत ।।२४।।

देखि री हरि के चंचल नैन ।
खंजन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर इक सैन ।
राजिवदल इंदीवर सतदल, कमल कुसेसय जाति ।
निसि मुद्रित प्रातहिं जु विकसित ये विकसित दिन राति ।
अरुन, स्वेत सित झलक पलक प्रति, को बरनै उपमाइ ।
मनु सरसुति, गङ्गा, जमुना मिलि, आगम किन्हौ आइ ।
अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठहराइ ।
सूर स्याम लोचन अपार छवि, उपमा नेनि सरमाइ ।।२५।।

चितवनि रोकैं हूँ न रही ।
स्यामसुन्दर-सिंधु-सनमुख, सरिता उमँगि बही ।
प्रेम सलिल-प्रवाह भँवरनि, मिति न कबहुँ लही ।
लोभ-लहर कटाच्छ घूँघट-पट-करार ढही ।
थके पल पथ, नावधीरज परति नहिंन गही ।
मिली सूर सुभाव स्यामहिं, फेरिहू न चही ।।२६।।

देखि सखी अधरनि की लाली ।
मनि मरकत तैं सुभग कलेवर, ऐसे हैं बनमाली ।
मनौ प्रात की घटा साँवरी, तापर अरुन प्रकास ।
ज्यौं दामिनि बिच चमकि रहत है, फहरत पीत सुवास ।
कीधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि, जुग फल बिंब सुपाके ।
नासा कीर आइ मनु बैठ्यौ, लेत बनत नहिं ताके ।
हँसत दसन इक सोभा उपजति, उपमा जदपि लजाइ ।
मनौ नीलमनि पुट मुकुता-गन, बंदन भरि बगराइ ।

किधौं व्रज कनि,लाल नगनि खंचि तापर विद्रुम पांति ।
किधौं सुभग वंधूक-कुसुम-तर, झलकत जल-कन-काँति ।
किधौं अरुन अंवुज विच बैठी, सुन्दरताई जाइ ।
सूर अरुन अधरनि की सोभा, वरनत वरनि न जाइ ।।२७।।

लोचन भए पखेरू माई ।
लुब्धे स्याम रूप चारा को, अलक, फँद परे जाई ।
मोर मुकुट टाटी मानौ, यह बैठनि ललित त्रिभंग ।
चितवनि लकुट, लास लटकनि पिय, काँपा अलक तरंग ।
दौरि गहनि मुख-मृदु-मुसुकावनि, लोभ पींजरा डारे ।
सूरदास मन व्याध हमारौ, गृह वन तैं जु विसारे ।।२८।।

जद्यपि मन समुझावत लोग ।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग ।
निसि वासर छतिया लै आऊँ, बालक लीला गाऊँ ।
वैसे भाग वहुरि कव ह्वै हैं, मोहन मोद खवाऊं ।
जा कारन मुनि ध्यान धरैं, सिव अंग विभूति लगावैं ।
सो वालक लीला धरि गोकुल, ऊखल साथ वँधावै ।
विदरत नहीं बज्र कौ हिरदैं, हरि बियोग क्यों सहिऐ ।
सूरदास प्रभु कमलनयन विनु, कौने विधि व्रज रहिऐ ।।२६।।

नंद व्रज लीजै ठोंकि बजाइ ।
देहु विदा मिलि जाहिं मधुपुरी, जहँ गोकुल के राइ ।
नैननि पंथ कहौ क्यों सूझ्यौं, उलटि दियौ जव पाइँ ।
रघुपति दशरथ कथा सुनी ही, बरु मरते गुन गाइ ।
भूमि मसान विदित यह गोकुल, मनहु धाइ कै खाइ ।
सूरदास प्रभु पास जाहिं हम, देखहिं रूप अघाइ ।।३०।।

देखियति कालिंदी अति कारी ।
अहौ पथिक कहियौ उन हरि सौं, भई बिरह जुर जारी ।
गिरिप्रजंक तैं गिरति धरनि धँसि, तरंग तरफ तन भारी ।
तट वारू उपचार चूर, जलपूर प्रस्वेद पनारी ।
विगलित कच कुस काँस कूल पर, पंक जुकाजल सारी ।
भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, दिसि दिसि दीन दुखारी ।
निसि दिन चकई पिय जू रटति हैं, भई मनौ अनुहारी ।
सूरदास प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी ।।३१।।

हमकौं सपने मैं हूँ सोच ।
जा दिन तैं बिछुरे नँदनंदन, ता दिन तै यह पोच ।
मनु गुपाल आए मेरे गृह, हँसि करि भुजा गही ।
कहा कहौं बैरिनि भइ निद्रा, निमिष न और रही ।
ज्यौं चकई प्रतिबिंब देखि कै, आनंदै पिय जानि ।
'सूर' पवन मिलि निठुर विधाता, चपल कियौ जल आनि ।।३२।।

गोपी-विरह-वर्णन

पिय बिनु नागिनि कारी रात ।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी है जात ।
जन्त्र न फुरत मँत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात ।
'सूर' स्याम बिनु विकल बिरहिनी, मुरि मुरि लहरैं खात ।।३३।।

पावस-प्रसंग

बरु ए बदरौ बरषन आए ।
अपनी अवधि जानि नँदनन्दन, गरजि गगन घन छाए ।
कहियत हैं सुरलोक बसत सखि, सेवक सदा पराए ।
चातक पिक की पीर जानि कै, तेउ तहां तैं धाए ।
द्रुम किए हरित हरषि बेली मिलीं, दादुर मृतक जिवाए ।
साजे निबिड़ नीड़ तृन सँचि सँचि, पंछिनहूँ मन भाए ।
समुझति नहीं चूक सखि अपनी, बहुतै दिन हरि लाए ।
'सूरदास' प्रभु रसिक सिरोमनि, मधुवन बसि बिसराए ।।३४।।

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि ।
किधौं हरि हरषि इन्द्र हठि बरजे, दादुर खाए सेषनि ।
किधौं उहिं देस बगनि गए छाँड़े,घरनि न बूँद प्रवेसनि ।
चातक मोर कोकिला उहिं बन, बधिकनि बधे बिसेषनि ।
किधौं उहिं देस बाल नहिं झूलतिं, गावति सखि न सुदेसनि ।
'सूरदास' प्रभु पथिक न चलहीं, कासौं कहौं सँदेसनि ।।३५।।

गोपी-वचन

निरखतिं अंक स्याम सँदर के बार बार लावतिं लै छाती ।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै है गइ स्याम स्याम जू की पाती ।
गोकुल बसत नन्दनन्दन के, कबहुँ बयारि न लागी ताती ।
अरु हम उती कहा कहैं ऊधौ, जब सुनि बेनु नाद सँग जाती ।
उनकैं लाड़ बदति नहिं काहूँ, निसि दिन रसिक-रास-रस राती ।
प्राननाथ तुम कबहिं मिलौगे, सूरदास प्रभु बाल सँघाती ।।३६।।

निरगुन कौन देस को वासी ?
मधुकर कहिं समुझाइ सौंह दै, बूझति साँच न हाँसी ।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसे वरन, भेष है कैसो, किंहिं रस मैं अभिलाषी ?
पावैगो पुनि कियो आपनौ, जोरे करैगौ गाँसी ।
सुनत मौत ह्वै रह्यौ बावरौ, सूर सवै मति नासी ।।३७।।

आयौ घोष बड़ौ व्यौपारी ।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज मैं आनि उतारी ।
फाटक दै के हाटक माँगत, भोरी निपट सुधारी ।
धुरही तौं खोटी खायौ है, लिये फिरत सिर भारी ।
इनकैं कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अनारी ।
अपनो दूध छाँड़िको पीवै, खार कूप की वारी ।
ऊधौ जाहू सवारैं ह्याँ तैं, बैगि गहरु जनि लावहु ।
मुख माँयौ पैहौ सूरज प्रभु, साहुहिं आनि दिखावहु ।।३८।।

उद्धव के प्रति उक्ति

(उधौ) ना हम विरहिनि ना तुम दास ।
कहत सुनत घट प्रान रहत है, हरि तजि भजहु अकास ।
विरही मीन करै जल विछुरैं, छाँड़ि जियन की आस ।
दास भाव नहिं तजत पपीहा, बरषत मरत पियास ।
पंकज परम कमल मैं विहरत, विधि कियौ नीर निरास ।
राजिव रवि को दोष न मानत, ससि सौ सहज उदास ।
प्रगट प्रीति दसरथ प्रतिपाली, प्रीतम कैं बनवास ।
'सूर' स्याम सौ दृढ़ ब्रत राख्यौं, मेटि जगत उपहास ।।३९।।

ऊधौ अव यह समुझि भई ।
नंदनंदन के अंग-अंग-प्रति, उपमा न्याय दई ।।
कुंतल कुटिल भंवर भामिनि बर, मालति भुरै लई ।
तजत न गहरु कियौ तन कपटी, जानी निरस भई ।।
आनंद इंदु विमुख संपुट तजि, करषे तैं न नई ।
निरमोही नव नेह कुमुदिनी, अंतहु हेय हई ।।
तन-घन-सजल सेइ निसिवासर, रटि रसना छिजई ।
'सूर' विवेकहीन चातक मुख, बूदौ तौ न स्रई ।।४०।।

हरि तैं भलौ सुपति सीता कौ ।
जाकैं बिरह जतन ए कीन्हैं, सिन्धु कियौ बीता कौ ।
लंका जारि सकल रिपु मारे, दिख्यौ मुख पुनि ताकौ ।
दूत हाथ उन लिखि जु पठायौ, ज्ञान कह्यौ गीता कौ ।
तिनकौ कहा परेखौ कीजै, कुविजा के मीता कौ ।
चढ़े सेज सातौं सुधि बिसरी, ज्यौं पीता चीता कौ ।
करि अति कृपा जोग लिखि पठयौं, देखि डराई ताकौ ।
'सूरदास' प्रीति कह जानैं, लोभी नवनीता कौ ।।४१।।

ऊधौ इतनी कहियो जाइ ।
अति कृसगात भई ये तुम विनु, परम दुखारी गाइ ।।
जल समूह बरसति दोउ अँखियाँ, हूँकति लीन्हें नाउँ ।
जहाँ जहाँ गो दोहन किन्हों, सूँघति सोई ठाउँ ।।
परति पछार खाइ छिन ही छिन, अति आतुर है दीन ।
मानहु 'सूर' काढ़ि डारी हैं बारि मध्य तैं मीन ।।४२।।

अति मलीन वृषभानु कुमारी ।
हरि स्रमजल भीज्यौं उर अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी ।
अधमुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुवारी ।
छुटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ।
हरि सँदेश सुनि सहज मृतक भइ, इक विरहिनि दूजे अलिजारी ।
'सूरदास' कैसे करि जीवैं, ब्रजवनिता विन स्याम दुखारी ।।४३।।

उद्धव प्रत्यागमन

ब्रज के निकट जाइ फिरि आयौ ।
गोपी-नैन-नीर-सरिता तैं, पार न पहुँचन पायौ ।।
तुम्हरी सीख सु नाल बैठी कै, चाहत पार गयौ ।
ज्ञान ध्यान ब्रत नेम जोग कौ, सँग परिवार लयौ ।।
इहि तट तैं चलि जात नैकु उत, बिरह पवन झकझोरै ।
सुरति बृच्छ सो मारि बाहुबल, टूट-टूक करि तौरै ।।
हौ हूं बूड़ि चल्यौ वा गहिरैं, केतिक बुड़की खाई ।
ना जानौं वह जोग बापुरौ, कहँ धौं गयौं गुसाई ।।
जानन हुतौ थाह वा जल कौ, औ तरिवै कौ धीर ।
'सूर' कथा जु कहा कहौं उनकी पर्‌यौ प्रेम की भीर ।।४४।।

राधा माधव भेंट भई ।
राधा माधव, माधव राधा, क्रीट भृंग गति ह्वै जु गई ।।
माधव राधा के रंग राँचे, राधा माधव रंग रई ।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई ।।
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहिं अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई ।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज बिहार नित नई नई ।।४५।।

केशवदास

रामचन्द्रिका

(पाँचवा प्रकाश)

ब्राह्मण-(तारक)

जब आनि भई सबकों दुचिताई । कहि 'केसव' काहू पै मेटि न जाई।
सिय संग लिये रिषि की तिय आई । इक राजकुमार महासुखदाई।।१।।

(मोहन)

सुंदर बपु अति स्यामल सोहै। देखत सुर नर को मन मोहै।
लाइय लिखि सिय को बरु ऐसो । रामकुँअर यह देखिय जैसो।।२।।

(तोटक)

रिषिराज सुनी यह बात जहीं। सुख पाइ चले मिथिलाहि तहीं।
बन राम सिला दरसी जबहीं। तिय सुंदर रूप भई तबहीं ।।३।।

(दोहा)

पूछी बिस्वामित्र सों रामचंद्र अकुलाई।
पाहन तें तिय क्यौं भई कहिये मोहिं समुझाइ।।४।।

विश्वामित्र-(सोरठा)

गौतम की यह नारि, इंद्रदोष दुर्गति गई।
देखि तुम्हैं नरकारि परम पतित पावन भई ।।५।।

(कुसुमविचित्रा)

तेहि अति रूरे रघुपति देखे। सब गुन पूरे तन मन लेखे।
यह बरु माँग्यो दियो न काहू। तुम मम मन तें कतहुं न जाहू ।।६।।

(कलहंस)

तहँ ताहि दै बरु कौं चले रघुनाथ जू। अति सूर सुंदर यौं लसैं रिषिसाथ जू।
जनु सिंह के सुत दोउ सिद्धिहि श्री रए । वन जीव देखत यौं सबै मिथिला गए।।७।।

(दोहा)

काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र-उद्दोत ।।८।।

राम- (चौपाई)

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मन के अनुराग भरे।
चितवत चित्त कुसुदिनी त्रसै । चोर - चकोर -चिता सी लसै ।।९।।

लक्ष्मण - (षट्पद)

अरुन गात अतिप्रात पद्मिनी-प्राननाथ भय।
मानहु 'केसवदास' कोकनद कोक प्रेममय।
परिपूरन सिंदूर पूर कैधौं मंगलघट।
किधौं सक्र को छत्र मढ़्यो मानिकमयूख -पट।
कैं श्रोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधों लसत दिगभामिनि के भाल को ।।१०।।

(तोटक)

पसरे कर कुम्दिनि काज मनो। किधौं पद्मिनी कों सुखदेन घनो।
जनु रिक्ष सबै यहि त्रास भगे। जिय जानि चकोर फँदानि ठगे ।।११।।

राम-(चंचरी)

ब्योम में मुनि देखिजै अति लालश्री मुख साजहीं।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल बिराजहीं।।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर-बाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई।।१२।।

विश्वामित्र-(सोरठा)

चढ़ो गगन तरु धाइ, दिनकर बानर अरुनमुख ।
कीन्हो झुकि झहराइ, सकल तारका कुसुम बिन।।१३।।

लक्ष्मण - (दोहा)

जहीं बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन संपति सोभा साज।।१४।।

(तोमर)

चहुँ भाग बाग तड़ाग। अब देखियै बड़ भाग।
फल फूल सों संजुक्त। अलि यौं रमैं जनु मुक्त।।१५।।

राम -(दोहा)

तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसक-हीन।
जलजहार सोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन।।१६।।

(सवैया)

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीसबिसे ब्रतभंग भयो सु कहौ अब 'केसव' को धनु ताने।
सोक की आगि लगी परिपूरन आइ गए घनस्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुन्य पुराने ।।१७।।

(दोधक)

आइ गए रिषिराजहि लीने। मुख्य सतानंद बिप्र प्रबीने।
देखि दुवौ भए पायनि लीने। आसिष सीरषबासु लै दीने।।१८।।

विश्वामित्र-(सवैया)

'केसव' ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेलि बई है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छ-सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोगमई है।।१९।।

जनक-(सोरठा)

जिन अपनो तन स्वर्न, मेलि तपोमय अग्नि में।
किन्हों उत्तम वर्न, तेई बिस्वामित्र ये।।२०।।

लक्ष्मण-(मोहन)

जन राजवंत । जग जोगवंत।
तिनको उदोत । केहि भाँति होत ।।२१।।

श्रीराम - (विजय)

सब क्षत्रिन आदि दै काहू छुई न छिये बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढै निसिवासर 'केसव' लोकन को तमतेज भगै।
भवभूषन-भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरन श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै।।२२।।

जनक-(तारक)

यह कीरति और नरेसन सोहै। सुनि देव अदेबन को मन मोहै।
हमको बपुरा सुनिये रिषिराई। सब गाँउ छ-सातक की ठकुराई।।२३।।

विश्वामित्र(विजय)

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपन की तुम ही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
'केसव' भूषन कों भवभूषन भू-तल तें तनुजा उपजाई।।२४।।

जनक-(दोहा)

इहि विधि की चित चातुरी तिनको कहा अकथ्य।
लोकनि की रचना रुचिर रचिबे कौं समरथ्य।।२५।।

जनक-(सवैया)

लोकन की रचना रचिवे कौं जहीं परिपूरन बुद्धि बिचारी।
ह्वै गई 'केसवदास' तहीं सब भूमि अकास प्रकासित भारी।
सुद्ध सलाक समान लसी अति रोषमई दृग दीठि तिहारी।
होत भए तब सूर सुधाधर पावक सुभ्र सुधा रँगधारी।।२६।।

(दोहा)

'केसव'बिश्वामित्र के रोषमई दृग जानि।
संध्या सी तिहुँ लोक के किहिनि उपासी आनि।।२७।।

जनक - (दोधक)

ये सुत कौन के सोभहिं साजै। सुंदर स्यामल गौर बिराजैं।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ। कै कमला - विमलापति कोऊ।।२८।।

विश्वामित्र -(चौपाई)

सुंदर स्यामल राम सु जानौ। गौर सु लक्ष्मन नाम बखानौ।
आसिष देहु इन्हैं सब कोऊ । सूरज के कुलमंडल दोऊ।।२९।।

(दोहा)

नृपमनि दसरथ नृपति के प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मन ललित अरु सत्रुघ्न उदार।।३०।।

विश्वामित्र-(धनाक्षरी)

दानिन के सील पर दान के प्रहारी दिन, दानवारि ज्यों निदान देखिजै सुभाय के।
दीपदीप हू के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम 'केसोदास'दास द्विज गाय के।
आनंद के कंद सुरपालक से बालक ये, परदारप्रिय साधु मन बच काय के।
देह धर्मधारी पै विदेहराजजू से राज, राजत कुमार ऐसे दसरथ राय के ।।३१।।

(सोरठा)

जब तें बैठे राज, राजा दसरथ भूमि में।
सुख सोयो सुरराज, ता दिन तें सुरलोक में।।३२।।

(स्वागता)

राजराज दसरथ्थ-तने जू। राम चंद भुवचंद बने जू।
त्यों बिदेह तुम हू अरु सीता। ज्यों चकोरतनया सुभगीता।।३३।।

विश्वामित्र-(तारक)

रघुनाथ सरासन चाहत देख्यो। अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।
जनक-रिषि है वह मंदिर माँझ मँगाऊँ। गहि ल्यावहि हौं जनजूथ बुलाऊँ।।३४।।

(पद्धटिका)

अब लोग कहा करिबे अपार। रिषिराज कही यह बारबार।
इन राजकुमारनि देहु जान। सब जानत हैं बल के निधान।।३५।।

जनक-(दंडक)

वज्र तें कठोर हैं कैलास तें बिसाल कालदंड तें कराल सब काल काल गावई।
'केसव' त्रिलोक के बिलोक हरि देव सब, छाड़ि चंद्रचूड़ एक और का चढ़ावई।
पन्नग प्रचंडपति प्रभु की पनच पान पर्वतारि पर्वतप्रभा न मान पावई।
बिनायक अनेक पै आवै ना पिनाक ताहि कामल कमलपानि राम कैसे ल्यावई

।।३६।।

विश्वामित्र - (दोहा)

राम हत्यो मारीच जेहि अरु तारका सुबाहु।
लक्ष्मन कों यह धनुष दै तुम पिनाक कौं जाहु।।३७।।

जनक-(त्रिभंगी)

सिगरे नरनायक असुर-बिनायक रक्षसपति हिय हारि गए।
काहू न उठायो थल न छड़ायो टरयो न टार्यो भीत भए।
इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आए हौ पैज करै।
ब्रतभंग हमारो भयो तुम्हारो रिषि तपतेज न जानि परै।।३८।।

विश्वामित्र-(तोमर)

सुनि रामचंद्र कुमार। धनु आनिये यहि बार।
पुनि बेग ताहि चढ़ाउ। जस लोकलोक बढ़ाउ।।३६।।

जनक-(दोहा)

रिषिहि देखि हरषै हियो राम देखि कुभिलाइ।
धनुष देखि डरपै महा,चिंता चित्त डुलाई।।४०।।

(स्वागता)

रामचंद्र कटि सों पटु बाँध्यो। लीलही सों हरको धनु साध्यो।
नेकु ताहि करपल्लव सों छूवै। फूल मूल जिमि टूक कर्यो द्वै।।४१।।

(सवैया)

उत्तमगाथ सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथजू हाथ कै लीनो।
निर्गुन तें गुनवंत कियो सुख 'केसव' संत अनंतन दीनो।
ऐंच्यो जहीं तबहीं कियो संजुत तिच्छ कटाक्ष नराच नवीनो।
राजकुमार निवारि सनेह सों संभु को साँचो सरासन कीनो।।४२।।

सतानंद-(दंडक)

प्रथम टंकारि झुकि झारि संसार-मद चंड कोदंड रह्यो मंडि नवखंड कों।
चालि अचला अचल घालि दिगपालबल पालि रिषिराज के बचन परचंड कों।
सोधु दै ईस कों बोधु जगदीस कों क्रोधु उपजाइ भृगुनंद बरिबंड कों।
बाँधि बर स्वर्ग कों साधि अपवर्ग धनुभंग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मंड कों
।।४३।।

जनक-(दोहा)

सतानंद आनंदमति तुम जु हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब तोर्‌यो श्रीरघुनाथ।।४४।।

सतानंद-(तोमर)

सुनि राजराज बिदेह । जब हौं गयो वहि गेह।
कछु मैं न जानी बात। कब तोरियो धनु तात।।४५।।

(दोहा)

सीताजू रघुनाथ कों अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबनि की हृदयावलि-भूपाल।।४६।।

(चित्रपद)

सीय जहीं पहिराई।रामहिं माल सुहाई।
दुंदुभि देव बजाए। फूल तहीं बरसाए।।४७।।

बिहारीलाल

जा-तन की झाँई परैं, स्यामु हरित-दुति होई ॥१॥

मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
वसतु-सु-चित-अन्तरतऊ, प्रतिविंवितु जग होइ ॥२॥

नितप्रति एकत ही रहत, बैस-बरन-मन-एक ।
चहियत जुगलकिसोर लखि, लोचन-जुगल अनेक ॥३॥

अपनैं-अपनैं मत लगे, बादि मचावत सोरु ।
ज्यौं-त्यौं सबकौं सेइबौ,, एकै नंदकिसोरु ॥४॥

कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिवी मुरारि ।
बीधे मोसौं आइकै, गीधे गीधहि तारि ॥५॥

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग नाइक, जग-बाइ ॥६॥

जगतु जनायौ जिहिं सकल, सो हरि जान्यौ नाँहि ।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखिन दैखौ जाँहि ॥७॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्जलु होइ ॥८॥

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु ।
मन-कांचै नाचै बृथा, साँचै राँचै रामु ॥९॥

मंगलु बिंदु सुरंगु, मुखु ससि, केसरि-आड़ गुरु ।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत ॥१०॥

कंज-नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार ।
कच-अंगुरी-बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार ॥११॥

नीकौ लसतु लिलार पर, टीकौ जरितु जराइ ।
छबिहिं बढ़ावतु रवि मनौ, ससि-मंडल में आइ ॥१२॥

अंग-अंग-नग जगमगत, दीपसिखा-सी देह ।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह ॥१३॥

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग ।
दीपति-देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग ।।१४।।
डीठि न परतु समान-दुति, कनकु-कनक में गात ।
भूषन कर करकस लगत, परसि पिछाने जात ।।१५।।
छाले परिबे कैं डरनि, सकै न हाथ छुवाइ ।
झझकत हियैं गुलाब कैं, झँवा झँवैयत पाइ।।१६।।
वेदी भाल, तँबोल मुँह, सीस सिलसिले बार ।
दृग आँजे राजैखरी, एई सहज सिंगार ।।१७।।
कहत सबै बेंदी दियें, आँकु दसगुनो होतु ।
तिय-लिलार बेंदीं दिऐं अगिनितु बढ़तु उदोतु ।।१८।।
खौरि पनिच, भृगुटी धनुषु, बधिकु-समरु, तजि कानि ।
हनतु तरुन-मृग, तिलक-सर सुरक-भाल, भरि तानि ।।१९।।
रस-सिंगार-मंजनु किए, कंजनु-भंजनु दैन ।
अंजनु रंजनु हूँ विना, खंजनु-गंजनु, नैन ।।२०।।
दृगनु लगत, बेधत हियहिं, बिकल करत अंग आन ।
ए तेरे सब तैं विषम, ईछन-तीछन बान ।।२१।।
अर तैं टरत न बर-परे, दई मरक मनु मैन ।
होड़ाहोड़ी बढ़ि चले, चितु, चतुराई, नैन ।।२२।।
हरि-छबि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैं न ।
भरत ढरत, बूड़त तरत रहत घरी लौ नैन ।।२३।।
खल-बढई बलु करि थके, कटै न कुवत-कुठार ।
आलबाल उर झालरी, खरी प्रेम-तरु-डार ।।२४।।
छिप्यौ छबीलौ मुँहु लसै, नीलैं अंचर-चीर ।
मनौ कलानिधि झलमलै, कालिंदी कैं नीर ।।२५।।
भौंह ऊँचै, आँचरु उलटि, मौरि मोरि मुहु मोरि ।
नीठि-नीठि, भीतर गई, दीठि-दीठि सौं जोरि ।।२६।।

कहा कुमुद, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति ।
जाकी उजराई लखैं, आँखि ऊजारी होति ॥२७॥

पीठि दिये हीं, नैंक मुरि, कर घूँघट-पटु टारि ।
भरि, गुलाल की मूठि सौं गई मूठि-सीमारि ॥२८॥
मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।

चलत-चलत लौं लै चलैं सब मुख संग लगाइ ।
ग्रीषम-वासर सिसिर-निसि प्यो मो पास बसाइ ॥२९॥

कहत सबै कवि कमल से, मो मत नैन पखानु ।
नतरुककतइनबियलगत, उपजतु बिरह-कृसानु ॥३०॥

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात ।
कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ॥३१॥

तर झरसी, ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाय ।
पिय-पातीं बिनही लिखी, बांची बिरह-बलाय ॥३२॥

विरह-बिकल बिनु ही लिखी, पाती दई पठाइ ।
आँक-बिहूनियौ सुचित, सूनैं बांचत जाइ ॥३३॥

औंधाई सीसी, सुलखि, बिरह-बरनि बिललात ।
बिचहीं सूखि गुलाबुगौ, छीटौ छूई न गात ॥३४॥

इति आवति चलि जाति उत, चली छ-सातक-हाथ ।
चढ़ी हिंडोरैं सैं रहै, लगीं उसासनु साथ ॥३५॥

कहा कहौं वाकी दसा, हरि-प्राननु के ईस ।
बिरह-ज्वाल जरिवो लखैं, मरिबौ भई असीस ॥३६॥

आड़े दै आले-वसन, जाड़े हूँ की राति ।
साहसुक कै सनेह-बस, सखी सबै ढिग जाति ॥३७॥

छकि रसाल-सौरभ, सने मधुर माधुरी-गंध ।
ठौर-ठौर झौंरत-झंपत भौंर-झौंर मधु-अंध ॥३८॥

बैठ रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह ।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँहो चाहति छाँह ॥३९॥

पावक-झर तैं मेह-झर, दाहक दुसह बिसेखि ।
दहै देहना के परस, याहि दृगनु हीं देखि ॥४०॥

अरुन-सरोरुह कर-चरन, दृग-खंजन मुख-चंद ।
समय आइ सुन्दरि सरद, काहि न करत अनंद ॥४१॥

ज्यौं-ज्यौं बढति बिभावरी, त्यौं त्यौं बढ़त अनंत ।
ओक-ओक सब लोक सुख, कोक सोक हेमंत ॥४२॥

चुवतु स्वेद, मकरंद-कन, तरु-तरु तर बिरमाइ ॥
आवतु दच्छिन देस तैं, थक्यौ बटोही बाइ ॥४३॥

कनकु-कनक-तैं-सगुनौ, मादकता अधिकाइ ।
उहि खायें बौराइ नर, इहिं पायें बौराइ ॥४४॥

गुनी-गुनी, सबकैं कहैं, निगुनी गुनी न होतु ।
सुन्यौं कहूँ तरु अरकतैं, अरक-समान उदोतु ॥४५॥

बढ़त-बढ़त सम्पति-सलिल, मन-सरोज बढ़ि जाइ ।
घटत-घटत पुन फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥४६॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु ।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रवि चंदु ॥४७॥

स्वारथु सुकृतु न, स्रमु-बृथा, देखि, बिहंग बिचारि ।
बाज, पराऐं पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ॥४८॥

नहिं पावसु, ऋतुराजु यह, तजि, तरवर चित-भूल ।
अपतु भऐं विजु पाइहै, क्यौं नव दल, फल-फूल ॥४९॥

नहिं परागु, नहिं मधुर-मधु, नहिं बिकासु इहिं काल ।
अली, कली ही सौं बंध्यौं, आगे कौन हवाल ॥५०॥